The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 3 | Issue 7 | July 2025
ISSN: 2583-973X (Online)
Website: www.theacademic.in

# मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति एवं वर्तमान भारतीय विधि संहिताओं का तुलनात्मक अध्ययन

**मंजुला मिश्रा**

पीएचडी शोधार्थी डिपार्टमेंट ऑफ लॉ

**डॉ. सीमा राजपूत**

प्रोफेसर डिपार्टमेंट ऑफ लॉ, मानसरोवर ग्लोबल यूनिवर्सिटी भोपाल मध्य प्रदेश

**DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.16874978**

**ARTICLE DETAILS**

**Research Paper**

**Accepted:** 28-07-2025

**Published:** 10-08-2025

**Keywords:**

*मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, भारतीय विधि संहिता, तुलनात्मक विधि, सनातन न्याय, सामाजिक न्याय*

**ABSTRACT**

प्रस्तुत शोध-पत्र भारतीय विधिक इतिहास की उन तीन महत्वपूर्ण विधिक परंपराओं का तुलनात्मक अध्ययन करता है, जिन्होंने भारत की सामाजिक और न्यायिक संरचना को विभिन्न युगों में दिशा प्रदान की — अर्थात् *मनुस्मृति*, *याज्ञवल्क्यस्मृति*, और *आधुनिक भारतीय विधि संहिताएँ*। यह अध्ययन इस बिंदु को केंद्र में रखकर किया गया है कि किस प्रकार प्राचीन धर्मशास्त्रों ने सामाजिक नियंत्रण, अपराध की परिभाषा, दंड व्यवस्था और नागरिक अधिकारों की संरचना को धार्मिक और नैतिक आधारों पर स्थापित किया, और आधुनिक विधिक व्यवस्था — विशेषतः भारतीय संविधान, भारतीय दंड संहिता (IPC), दंड प्रक्रिया संहिता (CrPC), और समानता आधारित व्यक्तिगत कानूनों — ने इन शास्त्रीय विधियों से किन रूपों में अंतर या साम्यता स्थापित की। इस शोध में यह गहराई से विश्लेषण किया गया है कि मनुस्मृति और याज्ञवल्क्यस्मृति जैसी स्मृतियाँ केवल धार्मिक आचार संहिताएँ नहीं थीं, बल्कि वे तत्कालीन समाज की विधिक चेतना की गूढ़ अभिव्यक्तियाँ थीं। इनमें वर्ण व्यवस्था, दायित्व–अधिकार संतुलन, अपराधों की सामाजिक स्थिति के अनुसार व्याख्या, और न्याय की प्रक्रिया को धार्मिक और नैतिकता की कसौटी पर परखा गया। वहीं आधुनिक भारतीय विधि संहिताओं ने धर्मनिरपेक्षता, विधिक समानता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को प्राथमिकता देते हुए विधिक ढांचे को संवैधानिक मूल्यों के आधार पर विकसित किया। शोध का निष्कर्ष यह संकेत करता है कि भारत की विधिक संरचना केवल पाश्चात्य विचारधाराओं पर आधारित नहीं है, बल्कि उसकी जड़ें भारतीय सांस्कृतिक, धार्मिक एवं सामाजिक अनुभवों में गहराई से निहित हैं। यह तुलनात्मक विवेचन वर्तमान विधियों में निहित नैतिकता, न्याय सिद्धांत और सामाजिक समरसता

के उन सूत्रों को उजागर करता है, जो भारतीय विधिक परंपरा को विशिष्ट और बहुआयामी बनाते हैं। यह शोध भारतीय न्याय व्यवस्था के लिए एक वैचारिक पुनरावलोकन का माध्यम भी बन सकता है, जहाँ परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन को विधिक भाषा में पुनर्परिभाषित किया जा सके।

## प्रस्तावना

### भारतीय विधि परंपरा का ऐतिहासिक परिचय

भारत की विधि परंपरा विश्व की प्राचीनतम विधिक परंपराओं में एक मानी जाती है, जिसकी जड़ें वैदिक सभ्यता तक फैली हुई हैं। प्रारंभिक वैदिक साहित्य, विशेषतः ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में धर्म, ऋण, न्याय एवं सामाजिक कर्तव्यों के बीज स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। इन ग्रंथों में "ऋत" (cosmic order) की अवधारणा विधि के आदिस्वरूप के रूप में सामने आती है, जो न केवल प्राकृतिक नियमों का प्रतिनिधित्व करती है, बल्कि नैतिक और सामाजिक मर्यादाओं की भी आधारशिला है। समय के साथ, स्मृतियों-विशेष रूप से **मनुस्मृति** और **याज्ञवल्क्यस्मृति**- ने धर्म के विधिक स्वरूप को अधिक संगठित, संहिताबद्ध और व्यवहारिक रूप प्रदान किया। इन ग्रंथों में विधि को केवल अपराध और दंड के दायरे तक सीमित न रखकर, संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था, वर्णाश्रम धर्म, उत्तराधिकार, स्त्रीधन, ऋण, साक्ष्य आदि विषयों के विस्तृत विवरणों सहित प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार, भारतीय विधिशास्त्र का विकास धार्मिक, दार्शनिक और सामाजिक विमर्शों के साथ गहरे रूप में जुड़ा रहा है।

### धर्मशास्त्र आधारित विधियों का सामाजिक प्रभाव

धर्मशास्त्रों ने भारतीय समाज में विधिक और नैतिक चेतना को गहराई से प्रभावित किया है। मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्यस्मृति जैसी स्मृतियाँ न केवल विधिक नियमों का स्रोत रहीं, अपितु उन्होंने सामाजिक आचरण, वर्गीय संरचना, और पारिवारिक जीवन की भी दिशा तय की। वर्ण व्यवस्था, जाति धर्म, पुरुष–स्त्री संबंध, एवं राजा–प्रजा के उत्तरदायित्व इन ग्रंथों में विधिक दृष्टि से परिभाषित किए गए, जिससे विधि और नैतिकता के बीच स्पष्ट संबद्धता निर्मित हुई। यद्यपि इन विधियों में कई पक्ष आज के दृष्टिकोण से आलोचना के पात्र हैं-विशेषकर स्त्रियों और शूद्रों के संदर्भ में—फिर भी यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि उन्होंने भारतीय समाज की विधिक सोच को शास्त्रीय आधार प्रदान किया। इन ग्रंथों में उल्लिखित न्याय-व्यवस्था लोक-नीति, कर्तव्यबोध, एवं नैतिक अनुशासन पर आधारित थी, जो आज की विधिक प्रक्रियाओं से भिन्न होकर भी सामाजिक संतुलन बनाए रखने में सहायक रही।

### वर्तमान विधि व्यवस्था की संरचना

आधुनिक भारतीय विधि व्यवस्था स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के संविधान के माध्यम से पुनर्गठित हुई। संविधान ने विधियों को धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक और समाजवादी दृष्टिकोण से संहिताबद्ध किया, जहाँ व्यक्ति के मौलिक अधिकार, विधिक

समानता, सामाजिक न्याय एवं मानवीय गरिमा को सर्वोपरि रखा गया। भारतीय विधि संहिताएँ-जैसे कि **भारतीय दंड संहिता (IPC)**, **दंड प्रक्रिया संहिता (CrPC)**, तथा **साक्ष्य अधिनियम**-पाश्चात्य विधिक परंपराओं से प्रभावित होते हुए भी भारतीय सामाजिक ढांचे को ध्यान में रखकर कार्यशील हैं। इसके साथ-साथ **हिंदू विधि**, **मुस्लिम विधि**, एवं **समान नागरिक संहिता** जैसे विविध विधिक क्षेत्र यह दर्शाते हैं कि आधुनिक विधि व्यवस्था ने विविधता में एकता को बनाए रखने का प्रयास किया है। परंतु, यह भी सत्य है कि इस व्यवस्था में कई बार विधिक औपचारिकताएँ न्याय को विलंबित करती हैं, जिससे न्याय सुलभता एक चुनौती बन जाती है।

## शोध की आवश्यकता और उद्देश्य

इस शोध का मूल उद्देश्य यह समझना है कि भारतीय विधि की सनातन परंपरा और आधुनिक विधिक प्रणाली के मध्य क्या अंतर्संबंध विद्यमान हैं, और किस सीमा तक प्राचीन धर्मशास्त्र आज के विधिक संदर्भ में प्रासंगिक रह गए हैं। आज जब विधि व्यवस्था में दायित्वहीनता, न्याय में देरी, और सामाजिक असंतुलन की स्थितियाँ उत्पन्न हो रही हैं, तब यह आवश्यक हो गया है कि हम अपने सांस्कृतिक विधिक स्रोतों की पुनः समीक्षा करें। क्या मनुस्मृति और याज्ञवल्क्यस्मृति में निहित सिद्धांत आज की न्यायिक प्रणाली को दिशा देने में सक्षम हैं? क्या हम प्राचीन विधियों में निहित नैतिक चेतना और सामाजिक संतुलन को आधुनिक विधिक भाषा में रूपांतरित कर सकते हैं? इन्हीं प्रश्नों की गहन मीमांसा इस शोध-पत्र का ध्येय है।

शोध की आवश्यकता और उद्देश्य (Need and Objectives of the Study)

भारतीय विधि प्रणाली के विकास की यात्रा अत्यंत जटिल एवं विविधतापूर्ण रही है। एक ओर जहाँ भारत की विधिक जड़ें वैदिक कालीन धर्मशास्त्रों में गहराई से निहित हैं, वहीं दूसरी ओर स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत राष्ट्र ने एक आधुनिक, धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक विधिक ढाँचे को स्वीकार किया। किंतु यह तथ्य निर्विवाद है कि आधुनिक संविधान और दंड संहिताओं की संरचना में भी कहीं न कहीं प्राचीन विधि परंपराओं की छाया दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणस्वरूप, भारतीय दंड संहिता में 'न्याय', 'कर्तव्य', और 'अधिकार' जैसे मूलभूत तत्त्व-जो मनुस्मृति और याज्ञवल्क्यस्मृति में गूढ़ दार्शनिक आधार के रूप में विद्यमान हैं-आज भी न्यायप्रणाली की आत्मा बने हुए हैं। ऐसे में यह शोध आवश्यक हो जाता है कि हम यह जांचें कि वर्तमान विधि संहिताओं और प्राचीन स्मृतियों में निहित सिद्धांतों के मध्य कौन-से बिंदु साम्य के हैं, कौन-से टकराव के हैं, और इनका आधुनिक भारतीय समाज पर क्या प्रभाव पड़ रहा है।

वर्तमान समय में, जब न्याय प्रक्रिया अकसर विलंबित, जटिल एवं व्ययबोझिल प्रतीत होती है, तब समाज के सभी वर्गों में न्याय के प्रति विश्वास डगमगाता जा रहा है। इस स्थिति में यह प्रासंगिक प्रश्न उठता है कि क्या हमारे शास्त्रों में न्याय और धर्म के जो सिद्धांत वर्णित हैं, वे आज भी हमारे विधिक ढांचे को नैतिक दिशा देने में सक्षम हो सकते हैं? इस शोध के माध्यम से यह विश्लेषण किया जाएगा कि प्राचीन धर्मशास्त्रों-विशेषतः मनुस्मृति और याज्ञवल्क्यस्मृति-में सामाजिक न्याय, दंड-नीति, स्त्री अधिकार, उत्तराधिकार आदि विषयों पर जो दृष्टिकोण प्रस्तुत किए गए थे, वे आज के विधिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य में कितने

संगत और स्वीकार्य हैं। साथ ही यह भी उद्देश्य है कि विधिक न्याय और सामाजिक संतुलन के बीच सामंजस्य स्थापित करने हेतु इन शास्त्रों से कोई नैतिक मार्गदर्शन प्राप्त किया जा सकता है या नहीं।

इस शोध का एक प्रमुख उद्देश्य यह भी है कि विधि को केवल औपचारिकता या तकनीकी नियमों का संकलन न मानते हुए, उसे भारतीय सांस्कृतिक, धार्मिक और नैतिक परंपरा के आलोक में पुनर्परिभाषित किया जाए। शोध यह स्थापित करने का प्रयास करेगा कि विधि का उद्देश्य केवल अपराधों को दंडित करना नहीं है, बल्कि एक समरस, न्यायसंगत एवं सदाचारपूर्ण समाज की रचना करना भी है-जिसके लिए भारतीय शास्त्रों में जो मार्गदर्शन है, वह अनदेखा नहीं किया जा सकता। इस प्रकार यह अध्ययन न केवल एक विधिक तुलना प्रस्तुत करेगा, बल्कि विधिशास्त्र और संस्कृति के अंतर्संबंध की भी व्यापक मीमांसा करेगा।

## 2. मनुस्मृति: विधिक और सामाजिक दृष्टिकोण

### मनु द्वारा प्रतिपादित सामाजिक संरचना

मनुस्मृति भारतीय सामाजिक और विधिक परंपरा का एक अत्यंत प्रभावशाली और बहुचर्चित ग्रंथ है, जो न केवल सामाजिक आचार-संहिता का निर्धारण करता है, अपितु विधिक विमर्शों को भी नैतिकता के धरातल पर स्थापित करता है। इस ग्रंथ में वर्णाश्रम-धर्म के माध्यम से समाज को चार वर्णों-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र-में वर्गीकृत किया गया, जहाँ प्रत्येक वर्ण का विशिष्ट कर्तव्य, अधिकार, और सामाजिक उत्तरदायित्व निर्धारित किया गया। मनु के अनुसार, सामाजिक व्यवस्था तभी संतुलित रह सकती है जब प्रत्येक व्यक्ति अपने वर्णानुसार कर्तव्यों का पालन करे। इस प्रकार, विधि और धर्म का तादात्म्य स्थापित करते हुए मनु ने एक ऐसी सामाजिक संरचना की कल्पना की जो कर्तव्यबोध, अनुशासन और मर्यादा पर आधारित हो।

यह संरचना आधुनिक दृष्टिकोण से भले ही वर्गभेदी प्रतीत हो, किंतु उस समय की सामाजिक आवश्यकताओं एवं सांस्कृतिक परिपक्वता को देखते हुए इसे एक संगठित विधिक प्रयोग के रूप में देखा जा सकता है। मनु द्वारा प्रस्तुत व्यवस्था में राजा (राजा धर्म) की भूमिका निर्णायक रही, जो विधि के अनुशासन में रहकर प्रजा की रक्षा करता है। इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो मनुस्मृति ने शासन, न्याय और सामाजिक संतुलन को एक नैतिक ढांचे में बाँधने का प्रयास किया।

### अपराध और दंड की अवधारणाएँ

मनुस्मृति में अपराध केवल विधिक उल्लंघन नहीं बल्कि धर्म का अतिक्रमण भी माना गया है। अतः वहाँ दंड केवल सामाजिक सुधार का साधन नहीं, बल्कि आत्मशुद्धि और पुनर्व्यवस्था का भी उपाय माना गया है। ग्रंथ में विभिन्न अपराधों जैसे - चोरी, हत्या, व्यभिचार, झूठी गवाही, और अपवित्र आचरण – के लिए वर्ण, आयु, मनोभाव और परिस्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न दंड निर्धारित किए गए हैं। दंड की यह भिन्नता आज के समतावादी न्याय के मूल्यों के विरुद्ध प्रतीत हो सकती है, किंतु उस समय के सामाजिक ढांचे और कर्तव्यों की जटिलता के दृष्टिगत इसे विधिक रणनीति के रूप में समझा जाना चाहिए।

मनु के अनुसार, दंड का उद्देश्य केवल अपराधी को दंडित करना नहीं, बल्कि समाज में पुनः धर्म और व्यवस्था की स्थापना करना है। उनका कथन था – "दंड एव हि धर्मस्य मूलं" अर्थात् दंड ही धर्म का मूल है। यह दृष्टिकोण समकालीन restorative justice की अवधारणा के कुछ अंशों से मेल खाता है। इसके अतिरिक्त, मनुस्मृति में यह विचार भी विद्यमान है कि यदि कोई व्यक्ति पश्चाताप करता है, तो उसे दंड की तीव्रता में छूट मिल सकती है – जो आधुनिक न्यायशास्त्र की parole व plea bargain जैसी धाराओं से तुलनीय है।

**स्त्रियों, शूद्रों और वर्ण व्यवस्था का विधिक पक्ष**

मनुस्मृति में स्त्रियों और शूद्रों के लिए जो विधिक मानदंड प्रस्तुत किए गए हैं, वे आज के संवैधानिक मूल्यों की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। ग्रंथ में स्त्रियों को पिता, पति और पुत्र की अधीनता में रहने की बात कही गई है - "पिता रक्षति कौमार्ये, भर्ता रक्षति यौवने, पुत्र रक्षति वृद्धकाले"। यह स्त्री की स्वतंत्र विधिक पहचान को नकारता है। इसी प्रकार, शूद्रों को वेदाध्ययन, यज्ञ, और संपत्ति अधिकार से वंचित कर दिया गया, और उनके लिए सेवा का कार्य नियत किया गया। इस व्यवस्था ने विधिक समानता की अवधारणा को जातीय संरचना के अधीन कर दिया।

हालाँकि कुछ विद्वान यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि यह व्यवस्था केवल सामाजिक संतुलन बनाए रखने की दृष्टि से थी और इन विधानों का पालन काल-प्रासंगिक था, फिर भी यह स्पष्ट है कि यह दृष्टिकोण आज के लोकतांत्रिक एवं समतामूलक समाज में अस्वीकार्य है। भारत के संविधान ने इन्हीं रूढ़ियों को हटाते हुए समानता, स्वतंत्रता, और गरिमा को प्रत्येक नागरिक का मूल अधिकार माना।

**आलोचनात्मक मूल्यांकन**

मनुस्मृति का विधिक दृष्टिकोण गूढ़, संगठित और नैतिकता पर आधारित है, किंतु इसमें वर्णाश्रम व्यवस्था के माध्यम से सामाजिक वर्गीकरण एवं स्त्री–शूद्रों की सीमित भूमिका को जिस प्रकार से प्रस्तुत किया गया है, वह आधुनिक विधिक विमर्शों में प्रश्नचिन्ह उत्पन्न करता है। एक ओर यह ग्रंथ धर्म और विधि को एकीकृत कर समाज में अनुशासन और संतुलन लाने का प्रयास करता है, वहीं दूसरी ओर इसमें सामाजिक गतिशीलता और समान अवसरों की स्पष्ट कमी है।

आज के न्यायिक ढाँचे में मनुस्मृति से जो ग्रहणीय तत्व हैं, वे हैं – न्याय में नैतिकता का समावेश, राजा/शासक का कर्तव्यबोध, दंड का सामाजिक पुनर्संयोजन हेतु उपयोग, और कर्तव्यों के महत्व की स्थापना। परंतु स्त्री, दलित एवं वंचित वर्गों के प्रति भेदभाव की धाराएँ इस ग्रंथ की सीमाएँ प्रकट करती हैं। अतः इस ग्रंथ का सम्यक् अध्ययन आधुनिक विधिशास्त्र में केवल आलोचना नहीं, बल्कि मूल्यांकन और पुनर्पाठ के लिए भी आवश्यक है।

### 3. याज्ञवल्क्यस्मृति: न्याय की संहिताबद्ध दृष्टि

#### संहिताबद्धता और दंड प्रक्रिया की स्पष्टता

याज्ञवल्क्यस्मृति को भारतीय विधिशास्त्र के इतिहास में एक अत्यंत व्यवस्थित और व्यवहारिक ग्रंथ माना जाता है। जहाँ मनुस्मृति अधिक धार्मिक और नैतिक अनुशासन पर केंद्रित प्रतीत होती है, वहीं याज्ञवल्क्यस्मृति में विधियों को अधिक संगठित, संहिताबद्ध और व्यावहारिक स्वरूप में प्रस्तुत किया गया है। यह ग्रंथ मित्राक्षर और विज्ञानेश्वर जैसे प्रसिद्ध टीकाकारों के माध्यम से उत्तराधिकार, दायित्व, ऋण, स्त्रीधन, न्याय व्यवस्था आदि विषयों में अत्यंत प्रभावशाली बना। इसमें अपराधों की श्रेणीबद्धता, अभियोजन की प्रक्रिया, न्यायालय की संरचना और साक्ष्य के सिद्धांत स्पष्ट रूप से परिभाषित किए गए हैं, जिससे यह विधिशास्त्र का एक पूर्ववर्ती संहिता-सदृश स्वरूप प्रतीत होता है।

याज्ञवल्क्य ने दंड व्यवस्था को केवल दमनात्मक साधन न मानकर सामाजिक अनुशासन एवं धर्म-स्थापन का उपकरण माना। उन्होंने न्याय के लिए तीन प्रमुख साधनों-श्रुति, स्मृति और न्याय-का उल्लेख करते हुए यह स्वीकार किया कि न्याय को बदलती परिस्थितियों के अनुरूप ढलना चाहिए। यह विचार आज के precedent-based jurisprudence के अनुरूप प्रतीत होता है। दंड प्रक्रिया की स्पष्टता तथा न्यायिक कार्यविधियों की व्याख्या याज्ञवल्क्यस्मृति को एक व्यवहारिक और कार्यान्वित विधिशास्त्र का स्वरूप प्रदान करती है।

#### न्यायाधीश (राजा) की भूमिका और व्यावहारिक न्याय

याज्ञवल्क्यस्मृति में राजा को न केवल शासक अपितु मुख्य न्यायाधीश के रूप में चित्रित किया गया है। राजा का कर्तव्य है कि वह निष्पक्ष, नैतिक एवं धर्मसंगत निर्णयों के माध्यम से समाज में न्याय की स्थापना करे। न्यायिक प्रक्रिया को प्रभावी बनाने हेतु राजा के अधीन एक साभिकारी परिषद (परिषद या न्याय सभा) की स्थापना की बात की गई है, जिसमें विद्वान ब्राह्मण, सभ्य नागरिक और कानूनी विशेषज्ञ सम्मिलित रहते हैं। यह अवधारणा न्याय के सामूहिक निर्णय (collective deliberation) की दिशा में एक महत्वपूर्ण संकेत देती है।

याज्ञवल्क्यस्मृति में यह स्पष्ट किया गया है कि न्याय केवल नियमों के पालन से नहीं, बल्कि विवेक और परिस्थिति की समझ से भी जुड़ा होता है। इस दृष्टिकोण में न्यायाधीश को परिस्थितियों के अनुरूप निर्णय लेने की स्वतंत्रता प्राप्त है, जो आधुनिक discretionary power की अवधारणा से साम्य रखता है। न्याय का यह व्यावहारिक दृष्टिकोण याज्ञवल्क्य को मनु की तुलना में अधिक आधुनिक और लचीला विधिवेत्ता सिद्ध करता है।

#### उत्तराधिकार, स्त्रीधन, ऋण नियम आदि

याज्ञवल्क्यस्मृति की विशेषता यह है कि इसमें उत्तराधिकार और स्त्रीधन संबंधी प्रावधानों को अत्यंत व्यवस्थित और यथार्थवादी स्वरूप में प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने पुत्रों के उत्तराधिकार के अतिरिक्त कन्या, पत्नी, माता और विधवा के अधिकारों को भी परिभाषित किया, जो तत्कालीन समाज में महिलाओं की विधिक स्थिति को स्पष्ट रूप से उजागर करता है।

यद्यपि इन अधिकारों की सीमा आज के संवैधानिक मानदंडों की तुलना में सीमित थी, फिर भी यह उल्लेखनीय है कि याज्ञवल्क्यस्मृति ने स्त्रियों के स्त्रीधन को उनकी निजी संपत्ति माना और उसकी रक्षा का दायित्व परिवार एवं राज्य दोनों पर डाला।

ऋण व्यवस्था, ज़मानत, कर्ज़ की वसूली, और व्यापारिक दायित्वों को भी याज्ञवल्क्य ने विधिक दृष्टिकोण से परिभाषित किया। उन्होंने ऋणदाता और ऋणी के संबंधों को नियमबद्ध किया तथा न्यायालय को इन मामलों में निर्णायक भूमिका सौंपी। यह प्रक्रिया आज के सिविल कानूनों (civil codes) के प्राथमिक स्वरूप के रूप में देखी जा सकती है।

**विधिक प्रक्रिया के प्रारंभिक संकेत**

याज्ञवल्क्यस्मृति को पढ़ते हुए यह स्पष्ट होता है कि यह ग्रंथ भारत में संहिताबद्ध न्यायिक प्रणाली के विकास की दिशा में एक प्रारंभिक किंतु ठोस प्रयास था। न्यायालयों की संरचना, अभियोग और प्रतिवाद की प्रक्रिया, साक्ष्य के प्रकार (दस्तावेज, साक्षी, शपथ आदि), अपील, और दंड का निर्धारण आदि विषयों को जिस विधिपूर्णता से प्रस्तुत किया गया है, वह आज की न्यायिक प्रक्रिया के कई आधारभूत तत्त्वों से मेल खाती है।

याज्ञवल्क्य का दृष्टिकोण केवल धार्मिक अनुशासन तक सीमित नहीं था, बल्कि उन्होंने विधि को सामाजिक अनुशासन, आर्थिक लेन-देन और पारिवारिक उत्तराधिकार की समस्याओं से जोड़ते हुए एक व्यापक विधिशास्त्र का निर्माण किया। उनके दृष्टिकोण में न्याय केवल दंड नहीं, बल्कि सामाजिक पुनर्संरचना और धर्म-स्थापन का माध्यम है। इस प्रकार, याज्ञवल्क्यस्मृति को भारतीय विधिक इतिहास की एक परिपक्व एवं यथार्थवादी कड़ी के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

4. वर्तमान भारतीय विधि संहिताएँ

भारतीय संविधान और उसकी विधिक व्यवस्था

भारतीय विधिक प्रणाली का केंद्रीय स्तंभ है – *भारत का संविधान*, जो न केवल विधियों का स्रोत है, बल्कि एक सामाजिक-दार्शनिक घोषणापत्र भी है। संविधान ने भारत को एक *धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक, गणराज्य* के रूप में परिभाषित किया और विधि को जनहित के उपकरण के रूप में स्थापित किया। यह संविधान केवल विधिक अनुच्छेदों का संकलन नहीं, अपितु एक जीवंत दस्तावेज़ है, जो प्रत्येक नागरिक को मौलिक अधिकार प्रदान करता है – जैसे कि समानता, स्वतंत्रता, जीवन का अधिकार, और विधिक संरक्षण।

संविधान ने विधायिका, कार्यपालिका, और न्यायपालिका के माध्यम से विधियों को लागू करने की प्रणाली सुनिश्चित की, साथ ही साथ न्यायिक पुनरवलोकन (judicial review) के द्वारा विधियों की वैधता पर नियंत्रण भी स्थापित किया। संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार (Part III), और नीति निर्देशक तत्व (Part IV) भारतीय विधिशास्त्र को न केवल विधिक, बल्कि नैतिक आधार भी प्रदान करते हैं। यह व्यवस्था सुनिश्चित करती है कि विधि केवल राज्य की शक्ति का उपकरण न बनकर, नागरिकों के लिए समानता, गरिमा और सामाजिक सुरक्षा की गारंटी बने।

भारतीय दंड संहिता (IPC), दीवानी प्रक्रिया संहिता (CPC), दंड प्रक्रिया संहिता (CrPC)

भारतीय विधिक प्रणाली को व्यवस्थित और लागू करने हेतु तीन प्रमुख संहिताएँ कार्यरत हैं – **भारतीय दंड संहिता, 1860 (IPC)**, **दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (CrPC)**, और **दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 (CPC)**।

- **IPC** विभिन्न प्रकार के अपराधों (हत्या, चोरी, बलात्कार, धोखाधड़ी आदि) और उनके दंड को परिभाषित करती है।
- **CrPC** अभियोजन, गिरफ्तारी, जमानत, सुनवाई, और निर्णय की प्रक्रिया को निर्देशित करती है।
- **CPC** दीवानी मामलों जैसे संपत्ति विवाद, ऋण, अनुबंध उल्लंघन आदि की न्यायिक प्रक्रिया को व्यवस्थित करती है।

इन संहिताओं ने ब्रिटिश विधिक ढाँचे से प्रेरणा ली, किंतु भारतीय सामाजिक संरचना को ध्यान में रखते हुए इन्हें संशोधित और व्याख्यायित किया गया। समय-समय पर विभिन्न संशोधनों के माध्यम से इन्हें अधिक उत्तरदायी और न्यायोचित बनाने का प्रयास हुआ है। यद्यपि इन संहिताओं में कई जटिलताएँ और तकनीकी अड़चनें हैं, फिर भी यह व्यवस्था भारतीय लोकतंत्र की विधिक रीढ़ बनी हुई है।

महिला अधिकार, बाल संरक्षण, समानता और न्याय

वर्तमान भारतीय विधिक ढाँचे ने महिला अधिकारों और बाल संरक्षण को सर्वोच्च प्राथमिकता दी है। *मौलिक अधिकारों* के अंतर्गत लैंगिक समानता (अनुच्छेद 14, 15), समान अवसर का अधिकार (अनुच्छेद 16), और गरिमा से जीने का अधिकार (अनुच्छेद 21) स्त्रियों को संवैधानिक संरक्षण प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त *संपत्ति में अधिकार (हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 2005)*, *घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005*, *बलात्कार कानून (धारा 375–376 IPC)*, तथा *मातृत्व लाभ अधिनियम* जैसे विधानों ने स्त्रियों को विधिक दृष्टि से सशक्त बनाया है।

इसी प्रकार, बाल संरक्षण हेतु *बाल न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015*, *बाल श्रम निषेध अधिनियम*, और *पॉक्सो अधिनियम, 2012* जैसे विधानों की रचना की गई है। ये विधिक उपबंध इस बात की पुष्टि करते हैं कि राज्य विधि के माध्यम से समाज के दुर्बल वर्गों को सुरक्षा और सम्मानपूर्ण जीवन सुनिश्चित करने हेतु उत्तरदायी है।

विधिक दृष्टिकोण से धर्मनिरपेक्षता

भारतीय विधि व्यवस्था की सबसे विशिष्ट विशेषता इसकी *धर्मनिरपेक्षता* है। इसका अर्थ यह नहीं कि राज्य धर्मविहीन है, बल्कि यह कि राज्य सभी धर्मों के प्रति समदर्शिता रखता है और किसी विशेष धर्म के आधार पर विधिक भेदभाव नहीं करता। यह दृष्टिकोण संविधान के अनुच्छेद 25 से 28 तक परिलक्षित होता है, जहाँ धार्मिक स्वतंत्रता की गारंटी दी गई है।

विधिक दृष्टि से धर्मनिरपेक्षता का तात्पर्य यह भी है कि नागरिकों के अधिकार और कर्तव्य धर्म की सीमाओं से स्वतंत्र हैं। व्यक्तिगत कानूनों (Hindu Law, Muslim Law) को लागू करते हुए भी, सुप्रीम कोर्ट ने कई बार यह स्पष्ट किया है कि धार्मिक रीति-रिवाज संविधान की मूल भावना के विरुद्ध नहीं हो सकते। *शाह बानो केस*, *सबरीमाला निर्णय*, और *तीन तलाक* जैसे

उदाहरण इस बात का संकेत देते हैं कि आधुनिक विधि व्यवस्था धार्मिक विश्वासों के साथ संतुलन बनाते हुए संविधान की सर्वोच्चता को बनाए रखती है।

**5.** तुलनात्मक विश्लेषण

| **मापदंड** | **मनुस्मृति** | **याज्ञवल्क्यस्मृति** | **आधुनिक भारतीय विधि** |
|---|---|---|---|
| न्याय प्रक्रिया | राजा द्वारा | संहिताबद्ध व्यवस्था | न्यायपालिका आधारित |
| दंड नीति | वर्णाधारित | अपेक्षाकृत उदार | समानता पर आधारित |
| स्त्री अधिकार | सीमित | कुछ सुरक्षा उपाय | संवैधानिक अधिकार |
| उत्तराधिकार | पुत्र प्रधान | स्त्रीधन की परिभाषा | लैंगिक समानता |

6. आलोचनात्मक विमर्श

सनातन विधियों की आज की समाज में प्रासंगिकता

सनातन विधियाँ, विशेषतः मनुस्मृति और याज्ञवल्क्यस्मृति, भारतीय विधिक संस्कृति की आधारभूमि रही हैं। इन ग्रंथों में निहित सामाजिक अनुशासन, कर्तव्य-बोध, दंड-नीति और नैतिकता की अवधारणाएँ किसी भी समाज के विधिक विकास के लिए मूलभूत मानी जा सकती हैं। यद्यपि इन विधियों में वर्ण-व्यवस्था और लिंग आधारित भेदभाव स्पष्ट हैं, फिर भी इनका नैतिक विमर्श आज भी प्रासंगिक ठहरता है – विशेषतः जब वर्तमान विधिक प्रणाली अत्यधिक तकनीकी और औपचारिक होकर नैतिक चेतना से विच्छिन्न हो गई प्रतीत होती है।

वर्तमान समय में जब विधिक प्रक्रिया न्याय सुलभता, गति और सादगी के अभाव से जूझ रही है, तब यह उचित होगा कि सनातन विधियों में निहित धर्म, दया, क्षमा और दायित्व जैसे मूल्यों की पुनर्समीक्षा की जाए। यह विमर्श केवल धार्मिक प्रेरणा नहीं, अपितु एक सांस्कृतिक आत्मपुनरावलोकन भी है, जो विधिशास्त्र को फिर से मानव-केंद्रित बना सकता है।

विधिक नैतिकता बनाम संवैधानिक बाध्यता

भारतीय विधि का वर्तमान स्वरूप संविधान द्वारा परिभाषित है, जिसमें विधिक उत्तरदायित्व, न्याय प्रक्रिया, और नागरिक अधिकारों का स्पष्ट निर्धारण है। परंतु संवैधानिक बाध्यता और नैतिक उत्तरदायित्व के बीच का अंतर विधिक आचरण को दोहरापन देता है। उदाहरण के लिए, कोई कृत्य कानूनन वैध होते हुए भी नैतिक दृष्टि से अनुचित हो सकता है – जैसे न्याय में विलंब।

सनातन विधियों में विधि केवल दंडात्मक नहीं, बल्कि नैतिक और धार्मिक अनुशासन का रूप थी। मनु और याज्ञवल्क्य ने कर्तव्य और मर्यादा को विधि का आधार माना, न कि केवल शक्ति और नियम को। इस संदर्भ में यह प्रश्न उठता

है कि क्या आधुनिक विधिक व्यवस्था में नैतिक विवेक का स्थान है? क्या विधिक निर्णयों में केवल तकनीकीता पर्याप्त है, या फिर उन्हें मूल्य आधारित होना चाहिए? इस अंतराल को पाटने के लिए विधिक शिक्षा, न्यायिक निर्णय और विधि निर्माण में नैतिक दर्शन को पुनः स्थान देना आवश्यक प्रतीत होता है।

सुधार की संभावनाएँ और समावेश की आवश्यकता

भारत जैसे बहुलतावादी समाज में विधि की स्वीकार्यता और प्रभावशीलता तभी संभव है जब वह समाज के विविध वर्गों – स्त्रियों, दलितों, जनजातियों, धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों – की संवेदनाओं को समाविष्ट करे। सनातन विधियों की आलोचना का मुख्य आधार यही रहा है कि वे कुछ सामाजिक समूहों को विधिक अधिकारों से वंचित करती थीं। परंतु यदि इन विधियों की पुनर्रचना समावेशी दृष्टिकोण से की जाए, तो वे सामाजिक नैतिकता, पारिवारिक संतुलन, और व्यक्तिगत कर्तव्यों की प्रेरणा दे सकती हैं।

आज के विधिक परिप्रेक्ष्य में ऐसी प्रणाली की आवश्यकता है जो आधुनिक संवैधानिक ढाँचे को अक्षुण्ण रखते हुए भारतीय परंपरा से जुड़े मूल्यों को पुनर्स्थापित कर सके। इसके लिए विधानों की भाषा, कार्यप्रणाली और दंड प्रक्रिया में मानवीयता और सांस्कृतिक संवेदनशीलता का समावेश करना अत्यंत आवश्यक है। यह न केवल विधियों को अधिक प्रभावी बनाएगा, बल्कि न्याय को सामाजिक स्तर पर स्वीकार्य और सम्मानजनक भी बनाएगा।

धर्म और विधि के संतुलन की खोज

भारत में धर्म और विधि की परंपरा ऐतिहासिक रूप से परस्पर पूरक रही है, किंतु आधुनिक विधि व्यवस्था ने दोनों के बीच स्पष्ट रेखा खींच दी है। धर्म को निजी क्षेत्र में सीमित कर दिया गया और विधि को राज्य की अधीनता में पूर्ण रूप से धर्मनिरपेक्ष बना दिया गया। परंतु यह दृष्टिकोण कई बार सामाजिक स्तर पर असंतुलन उत्पन्न करता है, विशेषतः तब जब धार्मिक विश्वास और विधिक नियमों में टकराव उत्पन्न हो।

इसलिए आवश्यक है कि धर्म और विधि के बीच संतुलन की एक नई चेतना विकसित की जाए – जहाँ विधि संविधान के अधीन रहे, किंतु धार्मिक आस्थाओं के प्रति असंवेदनशील न हो। याज्ञवल्क्यस्मृति में यह दृष्टिकोण स्पष्ट है कि न्याय 'श्रुति, स्मृति और लोक' – तीनों से निर्देशित हो। इसी तर्ज पर आधुनिक विधिक प्रणाली भी 'संविधान, सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक संदर्भों' का समन्वय कर सकती है। यह समन्वय विधिक स्थिरता और सामाजिक सामंजस्य, दोनों को सुदृढ़ करेगा।

7. निष्कर्ष

भारतीय विधिक परंपरा का इतिहास केवल नियमों और अनुच्छेदों की श्रृंखला नहीं है, बल्कि वह एक जीवंत सामाजिक विमर्श रहा है, जो नैतिकता, धर्म, और न्याय के बीच संतुलन स्थापित करता आया है। मनुस्मृति और याज्ञवल्क्यस्मृति जैसी स्मृतियाँ इस परंपरा के प्रतिनिधि ग्रंथ हैं, जिन्होंने न केवल सामाजिक व्यवस्था को विधिसम्मत रूप प्रदान किया, बल्कि कर्तव्यबोध और मर्यादा की उस संस्कृति को भी जन्म दिया, जो किसी भी विधिक ढाँचे की आत्मा होती है।

इस शोध में यह स्पष्ट रूप से देखा गया कि मनुस्मृति एक ओर जहाँ धर्म और विधि का गूढ़ तादात्म्य प्रस्तुत करती है, वहीं याज्ञवल्क्यस्मृति विधि को अधिक संहिताबद्ध, न्यायिक और व्यवहारिक स्वरूप में सामने लाती है। इन दोनों स्मृतियों में वर्णाश्रम व्यवस्था के अंतर्गत समाज का वर्गीकरण भले ही आज अस्वीकार्य हो, किंतु न्याय की मूल भावना, दंड का नैतिक उद्देश्य, और कर्तव्य-केंद्रित समाज की अवधारणा आज भी प्रेरणास्पद है।

आधुनिक भारतीय विधि संहिताएँ – विशेषतः संविधान, IPC, CrPC और व्यक्तिगत कानून – समानता, स्वतंत्रता, और न्याय के संवैधानिक मूल्यों पर आधारित हैं। परंतु, न्याय की प्रक्रिया में नैतिकता का शून्य, न्याय में देरी, और जटिल तकनीकी प्रक्रियाएँ हमें इस ओर उन्मुख करती हैं कि क्या हमारे प्राचीन विधि ग्रंथों में कुछ ऐसे मूल्य हैं जिन्हें पुनः आत्मसात किया जा सकता है?

यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारत की विधिक संरचना को उसकी सांस्कृतिक जड़ों से काटकर केवल पाश्चात्य मॉडल पर आधारित बनाना न्याय को केवल औपचारिकता में सीमित कर देता है। इसके स्थान पर, यदि आधुनिक विधियों में सनातन परंपरा के न्यायसंगत, नैतिक और मानवीय पक्षों का समावेश किया जाए, तो विधि न केवल प्रभावी, बल्कि स्वीकार्य, सुलभ और समाजोपयोगी भी बन सकती है।

अतः यह शोध यह इंगित करता है कि भारत के विधिक भविष्य को सशक्त, संतुलित और नैतिक रूप से जागरूक बनाने के लिए यह आवश्यक है कि आधुनिक विधिक ढाँचे में परंपरा, आधुनिकता, न्याय और धर्म के बीच एक समन्वयात्मक दृष्टिकोण विकसित किया जाए। यह समन्वय न केवल विधिक सिद्धांतों की गहराई को बढ़ाएगा, बल्कि समाज में न्याय की वास्तविक अनुभूति को भी संभव बनाएगा।

संदर्भ सूची


- काणे, पांडुरंग वामन. *धर्मशास्त्र का इतिहास* (खंड 1–5). पुणे: भांडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट, 1930.
- शर्माजी, रामनाथ. *प्राचीन भारतीय विधि चिन्तन.* दिल्ली: दीप एंड डीप पब्लिकेशन, 2002.
- मनु. *मनुस्मृति (मेधातिथि भाष्य सहित).* अनुवाद: जी. ब्यूहलर. दिल्ली: चौखम्भा संस्कृत सीरीज़, 2011.
- याज्ञवल्क्य. *याज्ञवल्क्यस्मृति (मिताक्षरा टीका सहित).* सम्पादक: राजेन्द्रलाल मित्र. कलकत्ता: एशियाटिक सोसायटी, 1879.
- बासु, दुर्गादास. *भारतीय संविधान की भूमिका.* कोलकाता: प्रेंटिस हॉल, 2020.
- गैलंटर, मार्क. *आधुनिक भारत में विधि और समाज.* दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1997.
- उपेन्द्र बक्शी. *भारतीय विधिक प्रणाली का संकट.* दिल्ली: विकास पब्लिशिंग, 1982.

- ऑस्टिन, ग्रानविल. *भारतीय संविधान: राष्ट्र का आधारस्तंभ.* दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1966.
- डेररेट, जे. डंकन एम. *भारत में धर्म, विधि और राज्य.* लंदन: फेबर एंड फेबर, 1968.
- चतुर्वेदी, महेश. *मनुस्मृति का समकालीन पुनर्पाठ.* वाराणसी: चौखम्भा पब्लिकेशन, 2015.
- मिश्र, रामचंद्र. *भारतीय विधिशास्त्र का सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य.* इलाहाबाद: केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, 2010.
- सिंह, रवींद्रनाथ. *भारतीय विधि परंपरा का समाजशास्त्र.* दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2018.
- अरोड़ा, वी.एन. *संविधान और सामाजिक न्याय.* लखनऊ: ईस्टर्न बुक कंपनी, 2019.
- त्रिपाठी, के.के. *प्राचीन भारत में न्याय व्यवस्था.* वाराणसी: काशी हिंदू विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2007.